दूसरी गाथा में - ऐसा कहा, प्रत्येक पदार्थ अपने स्वसमय में परिणमे तब वह यथार्थ में आत्मरूप कहलाये। पररूप परिणमे तो यह अनात्मरूप दशा हुई। आत्मा में इस अपेक्षा से द्विविधपना आया। इसके द्वारा अब समय के द्विविधपना में आचार्य विरोध बताते हैं।

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि।।३।।

उसका गाथार्थ :- एकत्व निश्चयनय को प्राप्त जो समय नामक पदार्थ अपने में एकत्वपने को प्राप्त, पर के संबंध बिना... वैसे तो - ऐसा कहते हैं ***विरुद्ध कार्य और अविरुद्ध कार्य से जगत टिक रहा है। वह जो स्वभाव से विरुद्ध स्वतंत्र परिणमन हो कि स्वभाव से अविरुद्ध परिणमन हो, परंतु वस्तु तो ज्यों के त्यों सत्तारूप है।*** परके संबंधवाली बात आये वह दुःखरूप है। यह बात है। बाद में यह बात आयेगी। सूक्ष्मबात है प्रभु.....!

एकत्व निश्चय को प्राप्त जो समय वह लोक में सर्वत्र सुन्दर है। सुन्दर के दो अर्थ हैं। ***प्रथम लोक में प्रत्येक आत्मा एकेन्द्रिय आदि पर्याय में, द्रव्य तो शुद्ध ही है। द्रव्य अपेक्षा सुन्दर, परंतु उसकी सुन्दरता की प्राप्ति हो तब वह सुन्दररूप है - ऐसा कहा जाता है। इसलिये एकत्व निश्चयगत परिणमन कहा,*** क्या कहा ?

कि आत्मा जो है वह एकेन्द्रिय से लेकर चाहे जहाँ हो परंतु द्रव्य अपेक्षा वह शुद्ध ही है। द्रव्य में कहीं न्यूनता, खण्ड, विरुद्धता, अशुद्धता कुछ हुआ ही नहीं। आहाहा ! अन्य प्रकार एकत्वनिश्चयगत, जैसा स्वरूप है प्रभु आत्मा का वैसा अभेद रतनत्रयरूप परिणमे तब सुन्दर है। ***वस्तु सुन्दर है वह तो सामान्य बात कही, द्रव्य की बात कही परंतु यह द्रव्य की सुन्दरता उसके परिणमन में ज्ञात हुये बिना यह सुन्दरता है -*** ऐसा निर्णय अनुभव न हो तब तक सुन्दर है उसे ख्याल नहीं (आता)।

एकत्वनिश्चयगत, भगवान आत्मा... अपना जो अभेद रतनत्रय एकत्व, शुद्ध जो द्रव्य स्वभाव जो ध्रुव उसे ध्येय (बनाकर) जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र अभेदरूप हो वह सुन्दर है। वस्तु अपेक्षा सब जगह सुन्दर है। यह तो एक साधारण बात की परंतु यह सुन्दरता है जिसके ज्ञान में परिणमन मै मान हो उसके लिये सुन्दरता बराबर है। समझ में आया कुछ? यह ऐसी बात है।

एकत्वनिश्चय को प्राप्त, प्राप्त है न ? अभेदरत्नत्रय को प्राप्त हो, प्रभु आत्मा शुद्ध चिदानंदघन प्रभु, वह अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र दशा को प्राप्त हो, तभी उसकी शोभा है। तब उसका वास्तविक अस्तित्व दृष्टि में आया, अनुभव में आया। समझ में आया ? आहाहा !

`इसलिये एकत्व में दूसरे के साथ बंध की कथा'... भगवान आत्मा को कर्म के निमित्त से बंध के साथ संबंध, यह निंद्य है, विकार उत्पन्न करनेवाला है, यह निंद्य है, बंध कथा, अर्थात बंध भाव, भाव शब्द से बंध कथा है। है न ? बंध कथा। **दूसरे के साथ बंध की कथा शब्द है, परंतु उसका अर्थ यह कि दूसरे के साथ जो बंध का भाव वह निंदनीय है।** यह तो समयसार है। इसके एक-एक शब्द में सर्वज्ञ भगवान की कही हुयी वाणी है। बहुत गंभीरता है। आहाहा ! भगवान आत्मा एकपना पाये तब शोभा है। द्रव्य अपेक्षा एकत्वपना है। परंतु द्रव्य - ऐसा है - ऐसे अभेद रत्नत्रय की परिणति पाये तब वह शोभा को प्राप्त हो, उसमें कर्म के संबंध की बंध की कथा, अर्थात भाव... उससंबंध का भाव वह विरोध है। वह निंदनीय है। आहाहा ! इस आत्मा को अनात्म बनाये ऐसी यह दशा है, इसलिए वह विरोध है। सूक्ष्मबात है। यह कहानी नहीं यह तो भगवान वीतराग सर्वज्ञ की... आहाहा ! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव उनका यह कथन है भाई ! आहाहा ! विसंवाद, विरोध करनेवाली है, यह शब्दार्थ हुआ।

टीका :- यहाँ `समय' शब्द से सामान्यपने अर्थात सभी पदार्थों की श्रृंखला को यहाँ समय कहने में आया है। धर्मास्तिकाय है न ? सर्व पदार्थों में आता है। `कारण कि.....' व्युत्पत्ति की अपेक्षा **`समयते'** अर्थात एक भाव से एकत्वपूर्वक अपने गुण पर्यायों

को प्राप्त होकर जो परिणमन करे वह समय है, इसलिये इसमें सभी पदार्थ आ गये। क्या कहा यह ? सामान्य अपेक्षा `समय' अर्थात अकेला आत्मा - ऐसा नहीं, सभी पदार्थ, सम् + अय स्वयं अपनेरूप परिणमे- ऐसा समय अर्थात छहों द्रव्य। जो एकरूप से अपने गुणपर्याय रूप से प्राप्त होकर परिणमन करे वह समय है।

`इसलिये धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल, पुद्गल और जीव द्रव्य (छ द्रव्य) जीवद्रव्यस्वरूप लोक... आहाहा ! सर्वत्र जो कोई, जितने जितने पदार्थ हैं' जितनी जितनी संख्या में अनादि से और अनंतकाल इसी न इसी (प्रकार) जितने पदार्थ हैं उतने ही रहनेवाले हैं। आहाहा ! इससे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल और पुद्गल यह जीव द्रव्य स्वरूप लोक सर्वत्र... `जो कोई जितने जितने पदार्थ, वह सभी वास्तव में एकत्व निश्चय को प्राप्त होने से सुन्दरता को पाते है' अपने भाव में अकेले है, परके संबंध रहित, वह सुन्दरता को प्राप्त कहलाते हैं। आहाहा !

`कारण कि अन्य प्रकार से उसमें सर्व संकर आदि दोष आ जाते' है। दूसरी प्रकार कहें तो दो द्रव्य एक होजायें, या एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप हो जाये। जो इसप्रकार न हो तो, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप हो जाय, समझ में आया कुछ ? और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के बीच में संक्रमण हो जाये दोनों (मिलकर) एक हो जाय। दो एक हो जायें यह अलग, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप हो जाय यह दूसरा। ऐसे ऐसे दोष आयेगे, जो इसप्रकार न हो तो। आहाहा ! इसमें एकेन्द्रिय... दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय समय बिताया हो तो उसे यह समझना कठिन पड़े आहा ! सामायिक की, उपवास किया और प्रतिक्रण किया, इसमें धूल भी नहीं... कहाँ सामायिक। आहाहा !

आत्मपदार्थ जैसा है, इसीप्रकार छह द्रव्य, भगवान ने जिनेश्वरदेव ने, केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे, वह छह द्रव्य अपने गुण पर्याय को प्राप्त हो वह उनकी शोभा है। पर के संबंध में कुछ भी हो वह उसकी शोभा नहीं। आहाहा !

अन्य प्रकार शंकरादि दोष आ जाते हैं। कैसे है वह सर्व पदार्थ ? आहाहा !! `अपने द्रव्य में अंतर्मग्न रहे,' प्रत्येक द्रव्य जो वस्तु है... अनंत आत्मा, अनंतपरमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश यह सभी पदार्थ द्रव्य में अंतर-मग्न रहनेवाले... जो अपने में गुण और पर्याय रूप है। `अपने में अंतमर्ग्न रहनेवाले अनंत धर्मो।' धर्म अर्थात गुण पर्याय, द्रव्यने अपने गुण पर्याय को धारण कर रखा है। आहाहा ! है ? अपने अनंत धर्म के चक्र को अर्थात समूह को स्पर्शता है ? प्रत्येक द्रव्य अनंत संख्या में जो है, वह द्रव्य अपने में रहनेवाले गुण अर्थात कायम रही शक्तियाँ और वर्तमान पर्याय, उसे वह द्रव्य, अपने धर्मों को चूमता है- छूता है, उसे स्पर्श करता है। आहाहा ! `**तो भी**' तो भी क्यों कहा ? कि अपने

गुण पर्याय को तो स्पर्शता है न ! वह दूसरे के साथ स्पर्श करे छुये तो क्या तकलीफ है ? आहाहा !

'परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करता' यह एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं... आहाहा ! एक आत्मा... वह कर्म के उदय को, जड़ की दशा को छूता नहीं, स्पर्श करता नहीं। एक परमाणु को आत्मा छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा ! पैर यहाँ चलता है जमीन ऊपर तो यह पैर जमीन को छुये बिना चलता है, अब ऐसी बात !! वीतराग सर्वज्ञ के द्वारा कहा हुआ तत्त्व, स्वतंत्र और पर के अवलम्बन बिना जिसका रहना टिकना... अपने धर्म अर्थात गुण पर्याय को चूम कर रहता है। आहाहा ! यह कहते हैं हाथ है यह यहाँ नाक को छूता नहीं, चाकू से शाक सुधारने पर चाकू वह शाक को छूता नहीं। यह शाक तो उसके परमाणु की उसकी पर्याय, एक एक परमाणु की पर्याय जिससमय होनेवाली वह अपने से होती है। चाकू उसे छुता नहीं और चाकू से टुकड़े होते नहीं। अरे ! ऐसी बात है।

(श्रोता :- शाक पाटिया ऊपर ला कर रखते है न ?) पाटीया को छूती नहीं शाक। यह रोटी जो है उसे बेलन छूता नहीं। (आपकी बात सुनना बहुत कठिन है !) इसमें यह कहते हैं, कोई भी द्रव्य, द्रव्य है अर्थात अपने में रहनेवाले गुण भी हों और पलटती अवस्था भी हो - ऐसा होने पर भी अपने गुण-पर्याय को चूंमते छुये भी, परंतु दूसरे के द्रव्यगुणपर्याय को छूता नहीं, तीनकाल, तीनलोक में। आहाहाहा ! बिच्छु इस शरीर को डंक मारता नहीं, (छूता नहीं तो डंक कहाँ से मारे) छूता नहीं। आहा ! यहाँ तो क्या कहते हैं ? वस्तु स्थिति ही ऐसी है। स्वरूप से है, पररूप से नहीं। नहीं उसे वह क्यों छुये ? आहाहा !

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर उनके द्वारा कहा तत्त्व बहुत सूक्ष्म है बापू ! संप्रदाय में जन्मे, उसे भी उसकी खबर न मिले। वह तो पर की दया पालो और यह करो... यहाँ तो कहते हैं कि पर को छूता नहीं तो दया किस प्रकार पाले ? दया पालना अर्थात क्या ? दूसरे जीव की रक्षा करना। रक्षा अर्थात जो है उसे उसी प्रकार रखना, जब आत्मा उसे छू सकता नहीं तो रक्षा किस प्रकार करे ? रक्षा करने का भाव हो, वह तो उसकी पर्याय में भाव हो, परंतु वह पर्याय पर की रक्षा कर सकती है ? वह पर्याय पर को छूती नहीं। आहाहा ! यहाँ तो सभी (सर्व) मनुष्य को, आगे (आयेगा) मज्जंतु (सारा लोक) सारी दुनियाँ आओ और इसमें स्नान करो। चूल पइ पाउने से निमन्त्रण है। आहाहा !

कहते हैं कि तवा पर जो रोटी होती है, वह रोटी तवा को छूती नहीं, तवा अग्नि को छूता नहीं, अग्नि तवा को छूती नहीं, ऐसी बात है। आहाहा ! वस्तु का

स्वरूप ही इस प्रकार है। इसप्रकार न हो तो खिचड़ी होजाय, पहले आया न ? एक दूसरे में संक्रमण हो जाये अन्यथा एक दूसरे एक हो जायें। आहाहा !

देखो ! इसे (हाथ को) छुये बिना यह कागज ऊंचा होता है। आहाहा ! यह (हाथ) कागज को छूकर इसप्रकार ऊंचा होता है - ऐसा नहीं। अंगुली इसे छूती ही नहीं - ऐसा है। अब इसे दया पालना और दूसरों की हिंसा करना... आहाहा ! सत्य बोलना और झूठ नहीं बोलना और झूठ बोलना... यह सभी जड़ की पर्याय को आत्मा छूता नहीं तो करे कहाँ से ? आहाहाहा ! बहुत कठिन काम है। यह जीभ, ओठ को छूती नहीं। क्योंकि प्रत्येक रजकण अपने गुणपर्याय को छूते हैं परंतु दूसरे के द्रव्यगुण पर्याय को वह चूमता, छूता, स्पर्शता नहीं। आहाहा ! - ऐसा वस्तु का स्वरूप है। वस्तुस्थिति ऐसी है। (ताली बजने पर) इस अंगुली को हाथ छूता नहीं और आवाज होती है उसे यह हाथ छूता नहीं। तथा आवाज अंदर से आयी... भाषा की पर्याय की स्वतंत्रता, भाषा अपने गुण-पर्याय को छूती है। उसमें यह हाथ अपने गुण पर्याय को स्पर्शती है, परंतु इस भाषा की पर्याय को आत्मा स्पर्शे (- ऐसा नहीं) आहाहाहा ! उबलता हुआ गर्म पानी चमड़ी को छूता नहीं और यहाँ फोला पड़ता है। यह किस प्रकार से ? यह तो वीतराग की कोलेज है।

जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा... यह उनका कथन है। आहाहा ! यहाँ (गालपर) थप्पड़ मारे तब कहते हैं कि अंगुली (गाल को) छूती नहीं। कौन करे ? छूती नहीं, स्पर्शता नहीं वह भिन्न रजकण, वह भिन्न रजकण आहाहा ! अतः कोई मारे और - ऐसा कहे कि मैं तो तुम्हें छूता नहीं, परंतु मारने का भाव तुमने किया। उसमें तुम्हें - ऐसा हुआ कि उसे मैं - ऐसा करूं - यही मिथ्यात्वभाव है। आहाहाहा ! एक द्रव्य की पर्याय वर्तमान दशा, दूसरे द्रव्य की पर्याय को तीनों काल में छूती नहीं। स्पर्श करती नहीं। चूमती नहीं। आहाहा ! छुये तो दो पर्याय एक हो जाये, अथवा दो पर्याय है (उसमें से) एक पर्याय दूसरी पर्यायरूप होजाये। आहाहा ! - ऐसा तत्त्व है। है अंदर देखो ! इस एक पंक्ति में सभी समा दिया है `सर्व पदार्थ' - ऐसा आया न ? आहाहा !

सर्वपदार्थ... आहाहा ! जहाँ जीव गति करे वह अपने गुण-पर्याय को स्पर्श कर गति करे, परंतु धर्मास्ति को छूकर गति करे - ऐसा नहीं। इसीप्रकार धर्मास्तिकाय है, इसलिये यहाँ गति करनेवाले को छूता है (- ऐसा नहीं)... आहाहा ! ऐसी बात ! लोहे ऊपर छैनी पड़े, परंतु उस लोहे को छैनी छूती नहीं, क्योंकि छैनी के परमाणु स्वयं अपने गुण पर्याय में रहते हैं छैनी की पर्याय उसे छूती नहीं, छैनी की पर्यायधर्म पर के पर्यायधर्म को छूते नहीं। आहाहाहा ! इसे कितना अहंकार निकालना पड़ेगा ?

जहाँ हो, वहाँ हमने किया हमने किया, हमने किया। यहाँ तो आगे चलके यह कहेंगे कि वस्तु जो है आत्मा... वह व्यवहार को स्पर्शता नहीं, इसीप्रकार निश्चय व्यवहार को स्पर्शता नहीं। तभी वह सुन्दरता को पाता है, अभेद रत्नत्रय कहा है न !

`एकत्व निश्चयगत' अपने में जो ज्ञानदर्शन आदि अनंत गुण हैं और उसका परिणमन है, परिणमन है, विरुद्ध परिणमन है, वह है उसकी अवस्था से, इस प्रकार विश्व टिक रहा है। परंतु वह सुन्दरता को इस तरह नहीं पाता - ऐसा कहते हैं। सुन्दरता को तो विकृति रहित आत्मा अपनी निर्मल अभेद रत्नत्रय को पाए, वह उसकी सुन्दरता है और यह व्यवहार रत्नत्रय को, वह अभेद रत्नत्रय की पर्याय, व्यवहार रत्नत्रय का जो राग... उसे छूता नहीं और व्यवहार रत्नत्रय का राग अभेदरत्नत्रय को छूता नहीं। कि जिससे व्यवहार रत्नत्रय से निश्चय रत्नत्रय हो - ऐसा नहीं। आहाहा ! - ऐसा है लोक में। जैन के संप्रदाय में जन्मे और खबर नहीं होती जैन (धर्म) की, हम जैन हैं, जैन हैं, अरे बापू जैन किसे कहते बापू ?! आहाहा !

समस्त पदार्थ... इसमें कोई पदार्थ शेष नहीं रहा। अनंत अनंत परमाणु... आहाहा ! पानी अग्नि को छूता नहीं और पानी गर्म होता है वह उसका अपना धर्म है इसलिये। आहाहा ! यह तो अपने गुण और पर्याय रूप धर्म को पानी के रजकण छूते है, अग्नि को छूते नहीं और पानी गर्म होता है। आहाहा ! वह गर्म पानी के रजकणों की स्पर्श गुण की पर्याय है। यह पर्याय अग्नि से हुयी नहीं। आहाहाहा ! न ही अग्नि से पानी गर्म हुआ... यह तो प्रत्यक्ष है, पहले पानी ठंडा था।वह अग्नि को छुआ तब गरम हुआ। बापू ! तुम क्या देखते हो ? यह पानी स्वयं ही बदला है - ऐसा तुम देखते हो कि अग्नि का संयोग आया इसलिये बदला, यदि - ऐसा है तो तुम्हारी दृष्टि में फेर है। आहाहा ! पानी स्वयं बदलकर गर्म हुआ है। वह संयोगी चीज से गर्म हुआ है - ऐसा तीनकाल में नहीं। आहाहाहा !

तत्त्व की व्यवस्था ऐसी है - इसप्रकार उसे बताकर निमित्त ऊपर से तो लक्ष्य छुड़ाया है, परंतु निश्चय में जो व्यवहार साथ में होता है, उसका भी लक्ष्य छुड़ाना है, और अभेद रत्नत्रय को करने की बात है। आहाहाहा ! सेंतालीस शक्तियाँ आती हैं न, उसमें कोई शक्ति ऐसी सीधे अपने रूप है तथा पररूप नहीं - ऐसा नहीं, परंतु तत् और अतत् में से यह बात निकलती है। आत्मा ज्ञानरूप है वह ज्ञानरूप रहता है, और ज्ञेय जो रागादिक... ज्ञेयरूप होता नहीं उसमें अस्ति-नास्ति की बात आ जाती है। नयों के तो सात (भंग में) अस्ति का तो भंग अलग हुआ है। द्रव्य, पर्याय अस्ति-नास्ति, अस्ति-नास्ति और स्यात् अवक्तव्य।

परंतु इसमें तो वस्तु-वस्तुरूप से है। आत्मा वह ज्ञेयरूप है, यथार्थ तो राग और

परवस्तु ज्ञेयरूप है, उस ज्ञेयरूप तो वस्तु (आत्मा) होती नहीं। आहाहाहा ! ज्ञान स्वयं को जानते हुए, जानने के समय राग को, व्यवहार को जाने, फिर भी, उस रागरूप ज्ञान हुआ नहीं। आहाहा ! यह राग की पर्याय है इसलिये यहाँ स्वपर प्रकाशक पर्याय हुयी - ऐसा नहीं। वह स्वयं के गुण पर्याय का धर्म उस समय, स्वपर को जानने का स्व से उत्पन्न हुआ है। उसे यह स्पर्शता है। आहाहाहा ! समझ में आया? परंतु वास्तव में तो वह राग को स्पर्शता भी नहीं। बाहर के (अन्य द्रव्यों के) किसी गुण को तो स्पर्शता नहीं। यह तो एक तरफ रहो, क्योंकि आत्मा में बंध कथा विसंवादी बतायी है न ?

भगवान एक स्वरूप है, उसे राग का संबंध, बंध कथा अर्थात बंध भाव... आहाहाहाहा ! इसमें - ऐसा कहना है कि प्रत्येक पदार्थ विरुद्ध स्वभाव कि अविरुद्ध स्वभाव से रहकर भिन्न टिक रहा है। कोई किसी के कारण है नहीं, इसप्रकार जगत टिक रहा है। परंतु यहाँ बताकर उसमें से भिन्न करना है। पर से तो भिन्न किया। (आत्मा को) परंतु उसकी पर्याय में जो धर्म है उसे भी भिन्न करना है। आहाहा ! इसप्रकार एक तरफ - ऐसा कहा है कि अपने गुण पर्याय को चूमता है। पर को नहीं (परंतु) विकार को वह चूमता है। परंतु अब यहाँ तो एकत्व निश्चयगत सिद्ध करना है।

भगवान आत्मा अकेला चिदानंद ध्रुव, अनाकुल शांतरस का कंद, शांत, रसरूप परिणमे, वह व्यवहार और राग को छूता नहीं, व्यवहार और राग को स्पर्श करता नहीं, व्यवहार का राग... भगवान (आत्मा) शांत रूप, धर्मरूप अभेद रत्नत्रयरूप, परिणमता है, उसमें भी व्यवहार का राग को स्पर्श करता नहीं। आहाहा ! यह तो वीतराग सर्वज्ञ देव उनके द्वारा कहे गये तत्त्व की गंभीरता है। प्रभु ! यह बात सर्वज्ञ के अलावा कहीं, वीतराग जिनेश्वर के अलावा कहीं है नहीं। सभी जगह कम ज्यादा और विपरीत करके, उल्टा कर डाला है। पंथव्यामोहवालों को भी खबर नहीं, अभी कहाँ पड़े हैं, क्या है और कौन है। आहाहा !

यहाँ तो (लोग) कहते है कि निमित्त आये तो कार्य हो, जबकि यहाँ तो - ऐसा कहते हैं कि निमित्त छूता नहीं और कार्य होता है, यह तुम किस प्रकार कहते हो ? आहाहा ! जब अंदर में भेदज्ञान से लेते हैं तब तो 'एकत्वगत' अर्थात अभेद रत्नत्रय रूप परिणमे उसे भेदरत्नत्रय छूता नहीं कि भेद रत्नत्रय है, इसलिये अभेद रत्नत्रय हुआ - ऐसा नहीं। आहाहा ! सूक्ष्म है भाई यह। आहाहा ! वह तो सुबह उठे णमो अरहंताणम् करके एक सामायिक करे, होगया धर्म। जाओ अब २३ घण्टे पाप करो। सामायिक किसकी थी ? मिथ्यात्व की थी। आहाहा ! राग मंद करे कदाचित् वहाँ तो वह पुण्य था उसमें इसने धर्म माना था, वह तो इसने मिथ्यात्व

का सेवन किया है। आहाहाहाहा ! ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं सर्व पदार्थ... भगवान सर्वज्ञ देव ने जिनेश्वर देव ने जो अनंत आत्मा कहे... अनंत परमाणु यह रजकण है। यह अंगुली एक चीज नहीं कुछ, इसके टुकड़े करते करते करते आखरी हिस्सा रहे वह परमाणु, एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। आहाहा ! फिर भी शास्त्र में - ऐसा आता कि एक परमाणु में दो गुण चिकनापना है, दूसरे परमाणु में चार गुना चिकनापन है वह एकत्र हो तो चार गुण हों। यह तो इससमय चार गुण होने की योग्यतारूप पर्याय का धर्म अपना है। यह चार गुणवाला निमित्त था अतः चार गुण हुआ- ऐसा नहीं। अरे ! बहुत फर्क, बहुत बातों का फर्क है, आहाहा ! और यह शरीर के रजकण हैं यह जड़, माटी, धूल वह अंदर आत्मा को छूते नहीं और आत्मा भी शरीर को छूता नहीं तीन काल में। एक बात।

कर्म का उदय जड़ है अदंर, परमाणु की सत्ता है उसमें से उदय आता है वह जड़ है, उसे आत्मा छूता नहीं। उसीप्रकार यह कर्म का उदय जड़ है (जड़ की) पर्याय है, वह अपनी पर्याय को छूता है, परंतु वह जड़ पर्याय भी यहाँ राग को छूता है, इसलिये राग होता है - ऐसा है नहीं। आहाहाहा ! कठिन काम है बापू वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म। आहाहा ! यह चश्मा है वह यहाँ (नाक को) छुये बिना यहाँ रहता है, कौन माने ? पागल कहें पागल है ? (श्रोता :- पानी उतर जाय) और यह जो पैर जमीन ऊपर चलते हैं, वह पैर जमीन को छुये बिना चलते हैं - ऐसा यहाँ कहते हैं। पैर जो चलते हैं उसे आत्मा छूता नहीं, पैर ने जमीन को छुआ नहीं पैर ने जमीन को छुआ नहीं, पैर के परमाणुओं को आत्मा छूता नहीं। आत्मा परमाणुओं को छूता नहीं और पैर की गति स्वयंसे होती है। वह रजकणों की अपनी पर्याय के कारण होती है। आहाहाहाहा ! लोगों को कैसे समझायें ? चौबीसों घण्टे यह किया और वह किया, वह किया और यह किया। आहाहा !

पर पदार्थ की व्यवस्था हमने की, दुकान धंधे की व्यवस्था हमने की, उगाही लेने भी मैं गया और बराबर मैं लाया, अरे प्रभु ! क्या कहते हो तुम यह ? यह सभी मिथ्यादृष्टि का मिथ्या पाप का पाखण्ड भाव है। आहाहा ! देखो, यह तीसरी गाथा। (प्रतियोगिता में) एक दो-तीन - ऐसा नहीं करते ? तीन पूरी कर देते है !

तीसरी गाथा में `एयत्तणिच्छगदो' प्रभु भगवान आत्मा... अपने शुद्धस्वरूप को, पवित्र को... पुण्य-पाप के विकल्प हैं वह राग है उसे प्राप्त हो वह तो बंध कथा, बंध भाव है। आहाहा ! हां, स्वभाव से विरुद्ध कार्य और अविरुद्ध कार्य से जगत टिक रहा है - ऐसा बताया- ऐसा कि यह किसी के कारण कोई है - ऐसा नहीं। परंतु

अभी यहाँ तो आत्मा की बात करते हैं, तो विकार से भी आत्मा भिन्न बताया है। आहाहा ! दया, दान, व्रत और भक्ति को करे तो सम्यग्दर्शन हो, तो धर्मदशा व्यवहार करते करते हो, तथा व्यवहार निश्चय को पहुंचाये, वह बिलकुल मिथ्या शल्य है। आहाहाहा !

मिथ्यादर्शन शल्य महापाप है, अब इस पाप की कुछ खबर नहीं है। जीव मरे तो पाप लगे - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि जीव मरे हैं वह उसकी आयुष्य की पूर्णता हुयी इसलिये मरे, तुम उसे मार सकते हो यह तीन काल में बन सकता नहीं। आहाहा ! क्योंकि (यह) जीव उसे छू सकता नहीं। छूता नहीं तो मारे किस प्रकार ? (अज्ञानी की मान्यता में) बहुत फर्क है ? - ऐसा स्वरूप है बापू। आहाहा ! जिनेश्वरदेव... उनका गहरा कुंआ, अनंतगुण का मालिक प्रभु है, वहाँ इसे ले जाना चाहते हैं। आहाहा ! संयोग से तो भिन्न, परंतु संयोगी (भाव) राग, व्यवहाररत्नत्रय, संयोगीभाव... आहाहाहा ! उसरूप परिणमता है, पर से भिन्नपना माना परंतु उसरूप (रागरूप) परिणमते स्वभाव से भिन्न है। यह नहीं जाना तुमने। आहाहा ! आहाहाहा ! इन दो पंक्तियों में इतना ज्यादा भरा है। यह तो सभी उदाहरण है। आहाहा ! चार पैसे का सेर तो मन का ढाई रूपया फिर साड़े सेंतीस सेर का साड़े सेंतीस आना। दश सेर के दश आना, पच्चीस सेर के पच्चीस आना यह तो सभी उसके जीवन के उदाहरण (हैं)।

यह सभी पदार्थ... कैसे हैं सभी पदार्थ ? - ऐसा कहा है न ? कैसे है सर्व पदार्थ ? सर्व अर्थात अनंत पदार्थ, अनंत अर्थात अनंत आत्मायें और अनंत रजकण और असंख्य कालाणु, कैसे है ? `अपने द्रव्य में अंतर्मग्न रहे हुये' अपने द्रव्य में रहे हुये हैं अंतर्मग्न - `अपने अनंत धर्मों के चक्र' चक्र अर्थात समूह। आहाहा ! आत्मा अपने अनंत गुण अनंती निर्मल पर्याय उसे छूती है चूमती है। आहाहाहा ! `उसमें रहनेवालों को चूमता है, छूता है' आहाहाहा ! निश्चय से तो भगवान आत्मा (जो) व्यवहार दया, दान का विकल्प उठता है उसे यह आत्मा चूमता नहीं, छूता नहीं। आहाहा ! वह भिन्न रहता है। आहाहाहा ! - ऐसा जैन धर्म होगा ! जैन धर्म तो भाई सामायिक करो उपवास करना और प्रतिक्रमण करना यह गिरनार और पालीताना की यात्रा करना... बापा यह सभी बातें है।

यह शरीर की क्रिआयें वह शरीर का धर्म है वह तो उसका, उससे उसकी क्रिया होती है। तुम्हारे में राग होता है वह तो पुण्य है, जैन धर्म नहीं। रात्री को कहा था, ८३ गाथा (भावपाहुड़), पूजा, भक्ति, वंदना, वैयावृत्त, व्रत यह सभी भाव पुण्य है, धर्म नहीं, यह राग है यह आत्मा का वीतरागधर्म नहीं। आहाहाहाहा !

यहाँ तो बंध कथा बताकर राग का संबंध भी झूठा है - ऐसा बताना है। इसप्रकार पूरा जगत टिक रहा है वह स्वयं अपने गुण पर्याय में, चाहे विरुद्धरूप कि अविरुद्धरूप, जगत इस प्रकार टिक रहा है, किसी के संबंध से टिक रहा है - ऐसा नहीं। फिर उसमें से निकलकर अभेद रत्नत्रयरूप परिणमे आत्मा... शुद्धचैतन्य वस्तु, पर को तो छुये नहीं परंतु राग को छुये नहीं और अपने गुण पर्याय को स्पर्श करे द्रव्य अपनी पर्याय को स्पर्श करे। आहाहा ! जो द्रव्य पर्याय को छूता है, चूमता है। वह पर्याय को द्रव्य को चूम करके, स्पर्श करके... आहाहा ! जो निर्मल सम्यग्दर्शनज्ञान होता है उसका नाम (धर्म) शेष तो मजदूरी कर करके मर गया अनंतकाल से। एक तो व्यापार धंधा की मजदूरी, बड़ा मजदूर यह।

जिनेश्वरदेव, इन्द्र और गणधरों की उपस्थिति में - ऐसा कहते थे। वह बात यहाँ आयी है। इन्द्र और गणधर, भगवान के पास विराजते हैं अभी महाविदेह में, सीमंधर प्रभु वहाँ विराजते हैं। वहाँ जो कहते थे वह वाणी यहाँ आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ से आये, आहाहा ! यहाँ से गये थे, वहाँ से वापस आये... तब यह बनाया `समयसार' आहाहाहा... तब यह कहा कि भगवान तीनलोक के नाथ सीमंधर प्रभु, तुम सामायिक में जिनकी आज्ञा मांगते हो, भगवान ! यह भगवान - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! कि पर की दया तुम पाल सकते नहीं क्योंकि पर को तुम छू सकते नहीं। आहा ! पर को मार सकते नहीं क्योंकि पर को छू सकते नहीं। आहाहा ! झूठ बोलने की भाषा तुम कर सकते नहीं, क्योंकि उसको छूते नहीं। आहाहाहा ! आगे चलकर झूठ बोलने का जो भाव यह विकल्प है उसे निश्चयरत्नत्रय छूता नहीं। आहाहा ! यह तो वीतरागमार्ग बापू सूक्ष्म है। एक (की) कहानी सूक्ष्म हो तो भी साधारण व्यक्ति (नहीं समझें), यह तो जिनेश्वरदेव, त्रिलोकनाथ (की वाणी) उसे (कभी) सुना नहीं। आहाहा ! करे (समझे) तो कहाँ से !

फिर अपने अनंत धर्म लिये हैं। असंख्य कि संख्य नहीं, प्रत्येक परमाणु एक परमाणु हो, (पुद्गल का) आखरी अंश पोइन्ट, उसमें भी अनंत धर्म हैं। गुण और पर्याय अनंत हैं। अहाहा !

अनंत धर्मों के समूह को चूमता है। आहाहा ! छोटा बच्चा हो तो उसे चूमते हैं न ! गाल को छूते और चूमते हैं ? नहीं ! नहीं ! तुमने ओंठ को छुआ नहीं, ओंठ उसके शरीर को छुआ नहीं, वह शरीर तुम्हारे ओंठ को छुआ नहीं और मैंने चुम्बन लिया - ऐसा मानना (भ्रम है) आहाहाहा ! यह नया धर्म होगा - ऐसा ? परन्तु अभी तक तो सुना नहीं था तो नया निकाला होगा - ऐसा ? सोनगढ़वालों ने नया निकाला है - ऐसा कहते हैं। (श्रोता :- यहाँ सुनते नहीं थे इसलिये दूसरा

नहीं था ?) सभी था, बहुत जगह, महाविदेह में तो बीस तीर्थंकर प्रभु विराजते हैं वहाँ मूसलाधार धर्म चलता है। आहाहा !

नया निकाला और एकांतवादी हैं - ऐसा (कितने ही) कहते हैं। प्रभु तुम क्या कहते हो भाई ! तुम्हें तुम्हारे स्वभाव की और विभाव की स्वतंत्रता की तुम्हें खबर नहीं। आहाहा ! वे - ऐसा कहते हैं कि निमित्त से भी होता (और) उपादान से भी होता है यह अनेकांत है। यहाँ कहते हैं अपने से हो पर से न हो यह एकांत है। वह कहते है कि निश्चय से भी होता हैं, व्यवहार से भी निश्चय होता है, यह अनेकान्त है। यहाँ कहते हैं कि व्यवहार से निश्चय नहीं होता और निश्चय स्वद्रव्य के आश्रय से होता है यह अनेकांत है। आहाहा ! अर्थात अपना प्रभु जो पूर्ण गुण शक्तिवाला है उसके आश्रय से जब धर्म होता है, वह निश्चयनय सम्यक् एकांत में जाता है, वास्तव में नय यह सम्यक् अनेकांत है और सम्यक् एकांत हुआ ज्ञान। राग और व्यवहार है। - ऐसा साथ में जाने तब उसे प्रमाण ज्ञान कहा जाता है। आहाहा !

और यहाँ तक तो लिया। नय चक्र में (कहा) कि प्रमाण पूज्य नहीं क्योंकि प्रमाण के ज्ञान में पर्याय और राग आता है और इस निश्चय में पर्याय का निषेध वर्तता है इसलिये निश्चयनय पूज्य है, प्रमाण पूज्य नहीं। पर्याय को मिलाकर ज्ञान कहते हैं, परंतु वह पहले का (साथ में) रखकर आहाहा ! स्वभाव जो त्रिकाल है, उसका आश्रय लेकर जो होता है वह निश्चयनय को रखकर पर्याय को मिलाये उसे प्रमाण ज्ञान कहते हैं। अकेले को निश्चयनय कहते हैं, पर्याय को मिलाये उसे प्रमाणज्ञान कहते हैं। परंतु यह प्रमाण ज्ञान पर्याय को जाने यह अलग बात है पर्याय का आश्रय करते हैं वहाँ तो विकल्प उठता है, इसलिये प्रमाण ज्ञान में पर्याय का निषेध नहीं आता, प्रमाण में उसका ज्ञान आता है, निश्चय में तो इस पर्याय का निषेध वर्तता है। अरे ! ऐसी बातें हैं।

यहाँ तो उसे अभेद रत्नत्रय निश्चयगत सिद्ध करना है। 'निश्चयगत' है न ? ***एकाग्र निश्चयगत, एकाग्र निश्चय को प्राप्त यह वस्तु है भले उसे, प्राप्त कहो कि वस्तु है उसमें अभेद रत्नत्रय को प्राप्त कहो। यह सुन्दर है।*** (श्रोता :- यहाँ तो छह-द्रव्य की बात करना चाहिए न) यहाँ तो आत्मा में घटित करना है यहाँ अपन को तो छह द्रव्यों में से निकालना है इसमें, अन्तिम निष्कर्ष तो यह लेना है न ?

भिन्न-भिन्न सिद्ध होने से जीव नामक समय को... अंत में तो - ऐसा लेना है न ! भले बतलाये सभी की बात पहले कही, इसप्रकार जीव नामके पदार्थ को बंध कथा से विरुद्ध पाते हैं - ऐसा कहना है - ले तो वहाँ जाना है न ? आहाहा

! यह किसप्रकार का धर्म होगा। आहा ! संप्रदाय में तो जहाँ जाओ वहाँ यही बात चलती है, व्रत करो, सामायिक करो, उपवास करो, प्रतिक्रमण करो, छ काय जीव की दया पालो, छह पर्वों में हरी नहीं खाना, छह पर्वों में ब्रह्मचर्य पालन करना, यह किस प्रकार की बात है ? आहाहा !

बापू ! ये सभी बाहर की बाते जड़ की क्रिया, और अंदर में राग का भाव आये तो यह कोई धर्म क्रिया नहीं। आहाहा ! यहाँ तो स्वरूप जो है उसे छह द्रव्यों की स्थिति करके फिर आत्मा में बंधपना है, यह निर्दोष नहीं, सदोष है - ऐसा बतलाकर इसे वस्तु (ज्ञायक भाव) तरफ ले जाना है। आहाहाहा ! अब एक घण्टे में याद कितना रहे ? सभी बात भिन्न जाति की आती है। दान दो, पैसा खरचो, अकेले नहीं खाओ, देखो- ऐसा नहीं आता ? (पैसा मिलेगा पर अवसर नहीं मिलेगा) हा, परंतु अपना `पद्मनंदी पंचवीशति' - ऐसा कहा है अकेले खाओगे तो कौआ (की गति) में जाओंगे। यह आता है वह यहाँ राग की मंदता बताते हैं, फिर भी वह कहीं धर्म नहीं, निश्चय आत्मा के आश्रित धर्म है। जहाँ - ऐसा राग हो तो उसे व्यवहार धर्म का आरोप कहा जाता है। व्यवहार अर्थात कि यह - ऐसा नहीं, निमित्त के आधीन कथन किया जाता है। आहाहाहाहा !

सर्व पदार्थ कैसे हैं ? पदार्थ कैसे हैं... हम कहते हैं इसलिये - ऐसा है - ऐसा नहीं। भगवान - ऐसा कहतें हैं कि हमने कहीं पदार्थ को बनाया है ? भगवान ने कहीं पदार्थ बनाये नहीं। सर्व पदार्थ स्वयं सिद्ध हैं इसका कोई कर्त्ता ईश्वर-वीश्वर है नहीं। भगवान ने देखा है, कहीं भगवान ने किया है, पर-पदार्थों का स्वरूप ? - ऐसा नहीं है इसलिये यहाँ कहते हैं `कैसे है वे सर्व पदार्थ' वे पदार्थ कैसे है ? अपने द्रव्य में अंर्तमग्न रहते हुये, अपने अनंत धर्मों के चक्र को चूमते हैं, स्पर्श करते हैं। ऐसे यह पदार्थ हैं। ऐसे यह पदार्थ हैं। `अपने धर्मों को चूमते हैं फिर भी जो परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करते नहीं'। अरेरे ! यह बात कैसे बैठे ? आहाहा !

पैर चलते है, परन्तु वे जमीन को छूते नहीं और पैर का एक रजकण दूसरे रजकण को ठोकर मार सकता नहीं और छू सकता नहीं। कहो ! ऐसे चलते-चलते बीच में लकड़ी आये तब ठोकर मारते (हैं) ना, उसे छूता नहीं तो फिर ठोकर कैसे मारे ? अरे ! ऐसी बातें वहाँ - ऐसा पत्थर पड़ा हो वहाँ ऐसे मारे तो पत्थर इसप्रकार खिसक जाता है। बापू ! उस समय उसकी अपनी पर्याय धर्म है, उसमें यह रहता है। वह क्या तुम्हारी ठोकर के कारण आगे खिसक गया है - ऐसा नहीं है। आहाहाहाहा !

- ऐसा वीतरागी जैन धर्म, बानियों के हाथ में रह गया, बानिया व्यापार में

उलझ गये, निर्णय करने का समय निकाला नहीं। आहाहा !

ये पदार्थ कैसे हैं ? कि जो परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करते नहीं ऐसे ये पदार्थ हैं। - ऐसा कहा न ? कैसे हैं यह सभी पदार्थ ? अनंत आत्मायें, अनंत रजकण। यह कर्म के उदय को स्पर्शता नहीं और राग कर्म के उदय को राग स्पर्शते नहीं। आहाहाहाहा ! अब यहाँ कहते (है) कर्म का उदय आता है, इसलिये विकार करना पड़े। कर्म का उदय आता है निमित्त होकर इसलिये उसे विकार करना ही पड़े ? आहाहा ! - ऐसा है ही नहीं आहाहा ! प्रत्येक वस्तु अपनी शक्तियों और दशा को स्पर्शती है। आहाहा ! गिरते हुये लड़के का हाथ पकड़कर खड़ा रखा ? कहते हैं कि हाथने उसे छुआ नहीं। यह तो कौन माने ? तालाब में गिरता था तो हाथ पकड़ कर खड़ा रखा ? ना यह हाथ की क्रिया तुम्हारी नहीं और हाथ उसे छुआ नहीं और हाथ को तुमने छुआ नहीं ऐसी बात समझना (कठिन) है आहा ! प्रभु स्पर्श करता नहीं, कैसा है यह ? विशेष कहेंगे..... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)